नदी का तीसरा किनारा

जोआओ गुइमारेस रोसा

पिता एक ज़िम्मेदार, भरोसे के काबिल और व्यावहारिक आदमी थे। बचपन से ही वे ऐसे थे। जब मैंने पिता को जानने वाले लोगों से उनके बारे में पूछा तो उन सभी लोगों ने पिता के बारे में यही राय व्यक्त की। मुझे याद नहीं आता कि वे मुझे अपने आसपास के लोगों की तुलना में कभी ज़्यादा धुनी या रूखे मिजाज़ वाले लगे हों। हाँ, वे बातें कम ही किया करते थे। हमारी माँ ही हर रोज़ हम तीनों को - मुझे, मेरी बहन और मेरे भाई को, डाँटती-फटकारती या आदेश दिया करती थी। लेकिन एक दिन मेरे पिता ने अपने लिए एक नाव मँगवाई।

उन्होंने इस मामले को गम्भीरता से लिया। उन्होंने अपने लिए बढ़िया मिमोसा काठ की नाव बनवाई। वह आकार में छोटी थी और उसमें केवल एक आदमी के बैठने की जगह थी। वह पूरी तरह से हाथ से बनी हुई मज़बूत किस्म की लकड़ी की नाव थी, जो बीस-तीस बरस तक आराम से चल सकती थी। माँ नाव बनाने के विचार तक का मज़ाक उड़ाती रहती। वह पूछती - जिस व्यक्ति ने अपने समूचे जीवन-काल में कभी ऐसे करतबों में अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाया,

वह अपने जीवन के इस मुकाम पर अब नाव में बैठकर मछली पकड़ने और शिकार पर जाने की बात सोच भी कैसे सकता है? पिता कुछ नहीं कहते।

तब हमारा घर नदी से एक मील से भी कम की दूरी पर था, हालाँकि अब यह दूरी बढ़ गई है। घर के इतने करीब वह नदी बहती रहती - चौड़ी, गहरी और शान्त। सदा खामोशी से बहती हुई। वह इतनी चौड़ी नदी थी कि उसका दूसरा किनारा नज़र ही नहीं आता था। मैं वह दिन कभी नहीं भूल सकता जिस दिन नाव बनकर तैयार हो गई।

पिता ने न कोई खुशी ज़ाहिर की, न उत्साह, न ही निराशा। सदा की तरह उन्होंने अपनी टोपी पहनी, हमें अलविदा कहा और चल पड़े। उन्होंने एक भी शब्द और नहीं कहा, किसी भी तरह का खाना या और कोई सामान नहीं लिया और न ही जाते-जाते हमें कोई सलाह ही दी। हमें लगा जैसे माँ को चीखने-चिल्लाने का दौरा-सा पड़ जाएगा लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। केवल उनके चेहरे का रंग उड़ गया और दाँतों से अपने होंठ काटते हुए वे कड़वाहट से भरकर बोलीं, "तुम्हारी मर्ज़ी है, जाओ चाहे जहाँ रहो। लेकिन अगर जा रहे हो तो फिर कभी लौटकर नहीं आना!"

पिता की चुप्पी रहस्यमयी बनी रही। उन्होंने प्यार से मेरी ओर देखा और मुझे अपने साथ लेकर चलने लगे। मैं माँ के गुस्से से डर रहा था, लेकिन मैं फिर भी पिता के साथ हो लिया। हम नदी की ओर बढ़ने लगे। मैं उनके साथ आश्वस्त महसूस कर रहा था। रोमांच से भरकर मैंने उनसे पूछा, "पिताजी, क्या आप अपनी नाव में मुझे भी ले चलेंगे?"

लेकिन उन्होंने मुझे आँख भरकर देखा, अपना आशीर्वाद दिया और इशारे से मुझे लौट जाने के लिए कहा। मैंने उन्हें दिखाने के लिए लौटने का नाटक भी किया पर जैसे ही वे मुड़े, मैं उन्हें

देखने के लिए घनी झाड़ियों से ढँके एक गड्ढे में छिप कर बैठ गया। पिता नाव में बैठे, नाव की रस्सी खोली और उसे खेते हुए दूर निकल गए। नाव की लम्बी परछाईं पानी में किसी मगरमच्छ की तरह फिसलती चली गई।

पिता कभी नहीं लौटे। असल में वे कहीं ज़्यादा दूर गए भी नहीं थे। वे नदी के ही एक हिस्से में नाव खेते रहे। उनकी नाव बीच नदी के उसी हिस्से में इधर-उधर आती-जाती रही। वे हमेशा नाव में ही रहते। उन्हें किसी ने फिर कभी नाव से बाहर नहीं देखा। यह अजीब सच्चाई हम सभी को भयभीत करने के लिए काफी थी। जो आज तक कभी नहीं हुआ था, वह हो रहा था। हमारे रिश्तेदार, पड़ोसी और जान-पहचान वाले, सभी इस अद्भुत घटना पर चर्चा करने के लिए इकट्ठा हुए।

माँ ने बेहद समझदारी से काम लिया। उन्होंने धीरज बनाए रखा। हालाँकि किसी ने भी यह बात नहीं कही, लेकिन लगभग सभी का यही मानना था कि पिता पागल हो गए थे। केवल कुछ लोग ही ऐसे थे जिनका यह मानना था कि शायद पिता ईश्वर को दिया गया कोई वचन निभा रहे थे। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि सम्भवतः पिता को कोढ़ जैसी कोई भयानक बीमारी हो गई थी जिसकी वजह से वे एक दूसरा जीवन जीने के लिए हमें छोड़कर दूर चले गए थे। किन्तु दूर होकर भी वे हम सबके पास ही रहना चाहते थे।

नदी के किनारे रहने वाले लोगों और यात्रियों से यह खबर चारों ओर फैल गई थी कि पिता अब ज़मीन पर कदम कभी नहीं रखते थे - न दिन में, न रात में। इन्सानों से दूर वे अकेले और दिशाहीन-से नदी में भटकते रहते। माँ और हमारे अन्य रिश्तेदारों का मानना था कि पिता ने ज़रूर नाव में कुछ खाना छिपाकर रखा होगा जो जल्दी ही खत्म हो जाएगा। ऐसी हालत में उन्हें यहाँ नहीं तो किसी और जगह नाव को किनारे पर लाकर ज़मीन पर आना ही पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि या तो वे हमेशा के लिए हमसे दूर कहीं चले जाएँगे या फिर अपने किए पर पछताकर वे घर लौट आएँगे।

लेकिन वे सब गलत थे। मैं गोपनीय तरीके से प्रतिदिन पिता के लिए कुछ खाना चुरा लेता था। यह विचार मेरे मन में उस पहली रात को ही आ गया था जब पिता के जाने के बाद परिवार के हम सब सदस्य नदी के किनारे लकड़ियाँ जलाकर प्रार्थना करते रहे थे और अधीर होकर पिता को पुकारते रहे थे। उस दिन के बाद से हर रोज़ मैं पिता के लिए एक पूरी पाव रोटी, शक्कर या केले का गुच्छा लेकर नदी के किनारे जाता। एक बार एक घण्टे तक बेचैनी से प्रतीक्षा करने के बाद पिता नज़र आए। आईने-सी चिकनी नदी में वे अपनी थिरकती नाव में शान्त बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे

देखा पर न तो वे मेरी ओर आए, न कोई इशारा ही किया। मैंने खाना उन्हें दिखाया और फिर नदी के किनारे पत्थरों के घिसने से बनी एक खोह के अन्दर रख दिया। जानवरों, बारिश और ओस से वहाँ खाना सुरक्षित रहेगा, मुझे इसका यकीन था। हर रोज़, लगातार, मैंने ठीक वैसा ही किया। हालाँकि बाद में मैं यह जानकर हैरान हुआ कि माँ को सब पता था। माँ जान-बूझकर खाना ऐसी जगह रख देती थी जहाँ से मैं आसानी से ले जा सकूँ। पिता के बारे में अपनी भावनाओं को उन्होंने कभी ज़ाहिर नहीं किया।

बाद में खेती-बाड़ी और हिसाब-किताब में मदद के लिए माँ ने अपने भाई को अपने पास बुला लिया। हम बच्चों के लिए भी एक शिक्षक नियुक्त कर दिया गया ताकि हमारी पढ़ाई ठीक तरह से हो सके। माँ के कहने पर एक दिन एक पुरोहित पूजा का लिबास पहनकर नदी के किनारे गया और झाड़-फूँक करके पिता पर हावी भूत-प्रेत को भगाने लगा। उसने चिल्लाकर पिता से कहा कि उन्हें यह मूर्खतापूर्ण ज़िद छोड़ कर अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाना चाहिए।

अगली बार माँ ने पिता को डरा-धमकाकर वापस बुलाने के लिए दो सिपाहियों को नदी के किनारे भेजा। लेकिन ये सभी उपाय बेकार साबित हुए। पिता किनारे से दूर बने रहे। कई बार वे इतनी दूर चले जाते कि नदी के धुँधलके में वे बड़ी मुश्किल से नज़र आते। चूँकि कोई उनकी नाव के करीब नहीं जा पाता इसलिए न तो कभी कोई उन्हें छू पाया, न उनसे बात ही कर पाया। चिल्लाने पर भी वे जवाब नहीं देते।

कुछ अखबार वाले जब एक बार एक बड़ी नाव में बैठकर उनकी तस्वीर खींचने गए तो वे भी बाकी लोगों की तरह असफल रहे। पिता अपनी नाव खे कर दूसरे किनारे पर चले गए। वहाँ वे झाड़ियों में जा छिपे। दूसरे किनारे पर मीलों तक दलदल और घनी झाड़ियाँ थीं। केवल वे ही नदी

के उस इलाके का चप्पा-चप्पा जानते थे। अन्य लोग वहाँ रास्ता खो जाते थे। इसलिए भूल-भुलैया जैसी अपनी निजी पनाहगाह में वे महफ़ूज़ थे।

हमें इस सबका आदी हो जाना चाहिए था, लेकिन यह मुश्किल था और हम कभी ऐसा नहीं कर सके। मेरा तो यही मानना है। चाहे-अनचाहे मेरी सोच घूम-फिर कर उसी बिन्दु पर आ जाती थी। मैं पिता के बारे में फिक्र करने से खुद को नहीं रोक पाता था। मैं समझ नहीं पाता था कि वे ऐसा जीवन कैसे जी पा रहे थे। रात-दिन, कड़ी धूप, मूसलाधार बारिश और आँधी-तूफान जैसे कष्टों में भी वे नाव में डटे हुए थे। भयानक गर्मी और ठिठुरती सर्दी में, यहाँ तक कि साल के बीच के मुश्किल समय में भी वे बिना छत या सुरक्षा के कैसे जी पा रहे थे? उनके सिर पर केवल एक टोपी थी और तन ढकने के लिए बेहद कम कपड़े थे। फिर भी वे सप्ताह-दर-सप्ताह, महीने-दर-महीने, साल-दर-साल, एक अर्थहीन, लक्ष्यहीन, जीवन जीते चले जा रहे थे। पिता कभी ज़मीन पर नहीं आए। उन्होंने कभी रेतीले किनारे या घास पर पाँव नहीं रखा। वे कभी नदी में मौजूद किसी छोटे द्वीप पर भी नहीं उतरे।

यह सम्भव है कि झपकी लेने के लिए कभी-कभार वे अपनी नाव को किसी टापू के गुप्त कोने में झाड़ियों से बाँध देते होंगे। लेकिन उन्होंने कभी किनारे पर आकर आग नहीं सुलगाई, न ही कभी लालटेन या मोमबत्ती जलाई। यहाँ तक कि उन्होंने कभी माचिस की तीली भी नहीं जलाई। उनके पास कोई टॉर्च भी नहीं थी। अंजीर के पेड़ की जड़ों के पास बने खोखल में या नदी के किनारे की चट्टान की खोह में मैं उनके लिए जो खाना रख आता था उसमें से वे बहुत कम ही खाते थे। क्या केवल उतना ही जीवित रहने के लिए पर्याप्त था? क्या वे कभी बीमार नहीं होते थे? नाव को काबू में रखने के लिए लगातार चप्पू चलाते रहने की शारीरिक ताकत उनमें कहाँ से आती होगी? वह भी तब जब बीच-बीच में नदी में बाढ़ के तेज़ बहाव के साथ मरे हुए पशुओं और जड़ से उखड़े पेड़ों की वजह से खतरा और भी बढ़ जाता था। ऐसी दशा में वे खुद को और अपनी छोटी-सी नाव को कैसे बचा

पाते होंगे? यह सब कितना डरावना और खतरनाक होता होगा।

पिता ने कभी किसी जीते-जागते इन्सान से बात नहीं की। हम भी अब उनके बारे में आपस में बात नहीं करते थे, हालाँकि हम उनके बारे में सोचते ज़रूर थे। पिता को कभी भुलाया नहीं जा सकता था। यदि कभी-कभार पल भर के लिए हम उन्हें अपने ज़हन से निकाल देते तो भी कुछ देर बाद अचानक उनकी याद हमें एक वेग के साथ जगा जाती - वे जिस भयावह स्थिति में अपना जीवन जी रहे थे वह हमें बार-बार चौंका देने के लिए काफी थी।

मेरी बहन का ब्याह हो गया, किन्तु माँ ने यह समारोह बिना किसी ताम-झाम के, बेहद सादगी से पूरा किया। जब भी हम कुछ अच्छा खाते-पीते तो हमें पिता का खयाल आ जाता। यह बात हमें दुखी कर देती। और यह भी कि मूसलाधार बारिश वाली सर्द, तूफानी रातों में जब हम आरामदेह बिस्तरों में होते तब पिता अकेले अपनी असहायता में खुद को और नाव को बचाने की जद्दोजेहद में जुटे होते।

जान-पहचान वाले लोग अक्सर मुझे देखकर कह देते कि मेरी शक्ल अब मेरे पिता से मिलने लगी है। लेकिन मैं जानता था कि अब उनके बाल बढ़ चुके होंगे और दाढ़ी बेहद खुरदरी और सफेद हो चुकी होगी।

उनके नाखून भी बेहद बढ़ गए होंगे। मैं कल्पना कर सकता था कि अब वे कितने दुबले-पतले, कमज़ोर और बीमार लगते होंगे। हालाँकि मैं कभी-कभार खोह में उनके लिए कपड़े रख आता था, मुझे पता था कि अब वे लगभग नग्न ही होंगे। धूप में झुलसी उनकी त्वचा भी अब बड़े-बड़े बालों वाले किसी जानवर-सी हो गई होगी। पिता के बारे में सोचते ही मेरे ज़हन में उनकी यही छवि उभरती थी।

पिता ने हमारे बारे में जानने की कभी कोई कोशिश नहीं की। क्या उन्हें हमारी ज़रा भी परवाह नहीं थी? लेकिन मैं उनसे अब भी प्यार करता था, उनकी इज़्ज़त करता था। जब भी कोई किसी बात के लिए मेरी तारीफ करता तो मैं यही कहता, "यह सब करना मुझे पिताजी ने सिखाया था।"

यह बिलकुल सच तो नहीं था लेकिन इस झूठ में सच्चाई भी थी। यदि पिता अब हमें भूल चुके थे और हमारे बारे में नहीं सोचते थे तो वे हमसे दूर नदी में और आगे क्यों नहीं चले जाते थे जहाँ से न वे हमें देख सकते, न हम उन्हें देख पाते? वे क्यों हमारे आसपास ही बने हुए थे? इन प्रश्नों के उत्तर तो केवल वे ही दे सकते थे।

जब मेरी बहन ने बेटे को जन्म दिया, उसने ठान लिया कि वह पिता को उनका नाती दिखाएगी। परिवार के हम सब सदस्य नदी के किनारे पहुँचे। वह एक खुशनुमा दिन था। मेरी बहन ने शादी का सफेद जोड़ा पहन रखा था। उसने अपने बेटे को ऊपर उठाया और बच्चे के पिता ने उन दोनों के ऊपर एक छतरी तान दी। हमने पिता को आवाज़ दी और फिर इन्तज़ार करते रहे। बार-बार पुकारने के बावजूद पिता नहीं आए। मेरी बहन फूट-फूटकर रोने लगी। अन्त में वहाँ एक-दूसरे के गले लगकर हम सब बिलख-बिलख कर रोए। किन्तु पिता नहीं आए।

इस घटना के बाद मेरी बहन और मेरे जीजा रहने के लिए कहीं दूर चले गए। मेरा भाई भी रहने के लिए किसी और शहर में चला गया। समय तेज़ी से गुज़रता रहा। माँ बूढ़ी हो रही थी। अन्त में वह भी रहने के लिए मेरी बहन के पास चली गई। केवल मैं वहीं रह गया। अकेला। शादी करके फिर से परिवार बसा लेने का खयाल मेरे मन में कभी नहीं आया। अपने जीवन की विडम्बनाओं से घिरा हुआ मैं वहीं रुका रह गया। हालाँकि पिता ने कभी मुझे नदी में अपने निर्धारित भटकने का कारण नहीं बताया, मुझे पता था कि उन्हें मेरी ज़रूरत थी। अन्त में मैंने निश्चय किया कि मुझे पिता के इस अजीब व्यवहार का कारण जानना ही है। तब लोगों ने बताया कि शायद पिता ने अपनी यात्रा की वजह उस आदमी को बताई होगी जिसने उनकी नाव बनाई थी। लेकिन अब उसकी भी मृत्यु हो चुकी थी और किसी को भी ठीक से इस बारे में कुछ भी पता

या याद नहीं था। हाँ, कुछ लोगों ने ज़रूर कुछ मूर्खतापूर्ण बातें बताईं। उन लोगों के मुताबिक बहुत पहले एक बार नदी में भयानक बाढ़ आई थी। तब सबको लगा था कि लगातार हो रही मूसलाधार बारिश की वजह से आई वह प्रलयकारी बाढ़ सबको लील जाएगी। उन लोगों का कहना था कि शायद पिता आने वाले प्रलय या तबाही के अन्देशे की वजह से नाव बनवा कर पहले ही निकल पड़े। मैंने भी यह कहानी बहुत पहले सुनी थी हालाँकि अब मुझे यह ठीक से याद नहीं थी। कुछ भी हुआ हो, मैं अपने पिता को कभी दोष नहीं दे सकता था। अब तो मेरे सिर के बाल भी सफेद होने लगे थे।

मेरे पास कहने के लिए केवल अफसोसनाक बातें थीं। इस सबके लिए बराबर मैं खुद को दोषी क्यों मानता था? क्या इसकी वजह मेरे पिता थे? उनका इस तरह चला जाना था? उनकी कमी का शिद्दत भरा एहसास था? या फिर वह नदी थी जो अनन्त से अनन्त तक बहती थी? सदा नव-जीवन से भरी हुई जिसमें पिता भटक रहे थे।

मैं बूढ़ा होने लगा था। यह अवश्यंभावी था, मेरा यह जीवन केवल उसे मुल्तवी कर रहा था। मैं चिड़चिड़ा हो गया था। बीमार और बेचैन रहने लगा था। और पिता? आखिर उन्होंने ऐसा क्यों किया? यकीनन वे बहुत कष्ट झेल रहे होंगे। अब तो वे बहुत बूढ़े हो चुके थे। हो सकता है, अपने जीवन के इस अन्तिम समय में किसी दिन वे नाव को उलट जाने दें। या जब नदी में बाढ़ आए तो वे चप्पू

चलाना बन्द करके नाव को उफनती धारा के हवाले कर दें ताकि नाव किसी शोर मचाते जल-प्रपात की विराट ऊँचाई से गिरकर नदी की अतल गहराई में सदा के लिए विलीन हो जाए। मेरा जीवन तनावपूर्ण बना हुआ था। पिता वहाँ नदी में भटक रहे थे। यहाँ मेरी सुख-शान्ति हमेशा के लिए छिन गई थी। पता नहीं क्यों, मैं हमेशा अपराध-बोध से घिरा रहता था। मेरा अन्तर्मन भीतर तक छलनी हो चुका था। काश, मुझे पता होता। काश, चीज़ें कुछ अलग होतीं। और तब, एक दिन मेरे ज़हन में एक खयाल आया।

वह विचार ऐसा था कि मैं अगले दिन के लिए भी नहीं रुक पाया। क्या मैं पागल हो गया था? नहीं। हमारे घर में यह शब्द ज़बान पर नहीं लाया गया था। इतने बरसों में कभी नहीं। किसी ने किसी को कभी पागल नहीं कहा था। कोई पागल था भी नहीं। या फिर सभी पागल थे। उस दिन मैं नदी के किनारे चला गया। मेरे हाथ में केवल एक कपड़ा था जिसे हिलाकर मैं पिता का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहता था। मैं अपने पूरे होशोहवास में था। मैं इन्तज़ार करने लगा। आखिर वे मुझे बहुत दूरी पर नज़र आए। उनकी धुँधली आकृति धीरे-धीरे स्पष्ट दिखने लगी। वे नाव में बैठे हुए थे। मैंने उन्हें बार-बार पुकारा। और तब मैंने उनसे वे सब बातें कह डालीं जिन्हें कहने के लिए मैं न जाने कब से उतावला था।

मैंने पूरी ताकत से उन्हें विश्वास दिलाने के स्वर में कहा, "पिताजी, अब आप बूढ़े हो रहे हैं। आप बहुत लम्बे अरसे से वहाँ हैं। अब आप लौट आइए। आपने अपने हिस्से का काम कर लिया। अब आप को वहाँ रुकने की कोई ज़रूरत नहीं... आप लौट आइए और आपकी जगह मैं चला जाऊँगा। इसी समय या जब भी आप चाहें तब। हम दोनों यही चाहते हैं। मैं नाव में आपकी जगह ले लूँगा।" और जब मैंने यह कहा, मेरा दिल तेज़ी-से धड़कने लगा। लेकिन मेरे शब्द मेरे भीतर की सच्चाई और अच्छाई से उपजे हुए थे।

पिता ने मेरी बात सुनी। वे खड़े हो गए। उन्होंने चप्पुओं के सहारे नाव मेरी ओर मोड़ ली। वे मेरी बात मान गए थे। अचानक मैं भीतर तक काँप गया क्योंकि इतने बरस बाद पहली बार उन्होंने अपना हाथ उठाकर मेरी ओर हिलाया था और मैं कुछ न कर सका। बस खड़ा रह गया... फिर मैं बेतहाशा भागा। डर के मारे रोंगटे खड़े हो गए। मैं वहाँ से पागलों की तरह भागता चला गया क्योंकि पिता जैसे कब्र से उठकर आए हुए लग रहे थे... किसी दूसरी ही दुनिया से। मुझे माफ कर दें। माफी माँगता हूँ मैं। केवल माफी।

डर के मारे मेरा पूरा शरीर सर्द पड़ गया था। मैं बीमार हो गया। पिता के भरोसे को इस तरह तोड़ने के बाद क्या मैं इन्सान कहला सकता

हूँ? इस विफलता के बाद मेरे लिए अब चुप रहना ही बेहतर है।

मैं जानता हूँ, अब बहुत देर हो चुकी है। अब पछताने से कुछ नहीं होगा। फिर भी मैं अपने इस सतही जीवन से चिपका हुआ हूँ। आत्महत्या से डरता हूँ। लेकिन अन्त में जब मृत्यु आए तो मैं चाहता हूँ कि मुझे एक छोटी-सी नाव में लिटाकर नदी के अनवरत बहते जल में बहा दिया जाए। इसी नदी में जिसके किनारे कभी खत्म नहीं होते।

बहते-बहते मैं नदी की अथाह गहराइयों में खो जाऊँ। इसके जल में समाकर नदी का ही हिस्सा बन जाऊँ। हमेशा के लिए।

जोआओ गुइमारेस रोसा (1908-1967): बीसवीं सदी में जन्मे महानतम ब्राज़ीलियन उपन्यासकारों में से एक माने जाते हैं। इनका सबसे अच्छा उपन्यास *ग्रेंड सर्टाओ वेरेडस* माना जाता है जिसका *दी डेविल टू पे इन दी बेकलेंड्स* नाम से अँग्रेज़ी में अनुवाद हुआ था।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशांत सुप्रियः हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानीकार और कवि हैं। *हत्यारे* और *हे राम* आपकी लघु कहानियों के संकलन हैं। आपकी कहानियाँ और कविताएँ सभी प्रमुख पत्रिकाओं और अखबारों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

सभी चित्रः सौम्या शुक्लाः एन.आई.आई.एफ.टी., मुम्बई में डिज़ाइनिंग में स्नातक (द्वितीय वर्ष) की छात्रा हैं।

यह कहानी हिन्दी समय डॉट कॉम से साभार। यह वेबसाइट महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का एक उपक्रम है, जो हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओं की पाठकों तक पहुंच को आसान बनाती है।